मेरी भाषा की पहली प्रयोगशाला मेरा विश्वविद्यालय : अनुज खरे

माखनलाल पत्रकारिता विश्वविद्यालय से सीखा मन को पढ़ना : अनुज खरे

मैं अनुज खरे हूँ,

मध्यप्रदेश के भोपाल से निकला, मास कम्युनिकेशन, पत्रकारिता का एक छात्र...और आज भी, दिल से वही छात्र हूँ। फर्क बस इतना है कि अब क्लासरूम देशभर में फैले अलग-अलग मंच हो गए हैं। और मेरे असाइनमेंट? कभी कोई खबर, कभी कोई एक्सप्लेनर, कभी कोई वीडियो स्क्रिप्ट या कभी यूट्यूब लाइव होते हैं। हां कभी किसी किताब की कोई एकाध मारक लाइन या कभी किसी खबर की हेडिंग के लिए बनी बस एक चुटीली पंक्ति भी असाइनमेंट के रूप में काम आ सकती है।

1995-97 के सत्र में जब माखनलाल पत्रकारिता विश्वविद्यालय में दाख़िला लिया, तो भाषा में एक बेचैनी थी। लगता था, शब्द सिर्फ़ शब्द नहीं होते, वो चुपचाप किसी की ज़िंदगी बदल सकते हैं। और मैंने उसी 'बेचैनी' को ओढ़ लिया। और कंटेंट मेरे लिए पेशा नहीं, एक लत बन गया। ऐसी लत जो एक बार लग जाए, तो हेडिंग से लेकर हैशटैग तक सब पर नज़र जाती है। ये वो किस्म की लत है जो प्रिंट अख़बार की स्याही से शुरू हुई और डिजिटल स्क्रीन की तेज रोशनी तक पहुँचते-पहुँचते अब तक छूट नहीं पाई। बीते पचीस सालों में मैंने कंटेंट को वैसे ही देखा है जैसे कोई पुराना किरदार अपने हर नए संवाद को देखता है, थोड़ा संदेह से, थोड़ा प्यार से और हमेशा दोबारा लिखने की संभावना के साथ।

अगर कोई मुझसे पूछे कि `आप करते क्या हैं? ` तो जवाब देने में थोड़ा रुकता हूँ, क्योंकि ऐसा नहीं है कि बताने को कुछ नहीं है, बल्कि ये तय कर पाना मुश्किल होता है कि कहाँ से शुरू करूँ। उस खबर से जहाँ पहली बार बाईलाइन छपी थी, उस स्क्रिप्ट से जहाँ पहली बार कोई एंकर अटका था, या उस किताब से जहाँ पहली बार पाठक मुस्कराया था। इसी तरह designation मुझे हमेशा अलग तरह से अपील करता है...लेकिन राज़ की बात ये है कि मीडिया में असल काम 'designation' के बाहर ही शुरू होता है। 'designation' सिर्फ ओहदा तय करता है लेकिन आपका काम ही इस पेशे में आपकी हैसियत तय करते हैं। इस पेशे में अब तक सब कुछ बदला है. टेक्नोलॉजी, टेम्पो और टाइटल... मगर एक चीज़ जस की तस है: एक ईमानदार कहानी की ज़रूरत। एक संजीदा कहन की गुंजाइश!

मैंने कंटेंट को कभी वायरल, रीच, पेज व्यूज जैसी शक्लों में नहीं देखा। मेरे लिए कंटेंट तब सफल होता है जब वो किसी पाठक के भीतर दो दिन बाद फिर से गूंज जाए। कोई एक लाइन, जो बीच में अटक जाए और

दोपहर की चाय के साथ अचानक याद आए। बस, वही मेरी सबसे बड़ी 'यूज़र इंगेजमेंट' है। यही कनेक्ट इस पेशे की सबसे बड़ी जरूरत है। जो सफलता भी इंस्टेंट दिलवाती है। बस, इसी कनेक्ट पर काम करने की जरूरत है...यही पत्रकारिता में निर्वाण का रास्ता है। मोक्ष का द्वार है बंधु!

मैंने हर उस माध्यम में काम किया है जहाँ शब्द कुछ तय करते हैं। अख़बार, डिजिटल, मोबाइल ऐप, किताब, थिएटर और खेत तक। हाँ, खेत। क्योंकि पत्रकारिता के हर फार्मेट को आजमाने के बाद भी, जब किसान से बात करता हूँ तो लगता है, असली रिपोर्टिंग वहीं होती है, जहाँ स्क्रीन नहीं होती। दिल से सीधे दिल का मेल होता है...बिना चिट्ठी बिन तार होता है। और जिस दिन ये मेल बैठता है आपको पेशेगत निर्वाण प्राप्त करने से कोई रोक नहीं सकता है।

अब ज़रा बात करते हैं मेरी शुरुआत की। जो दैनिक भास्कर से हुई। वहाँ टीम लीड की...और लगभग सभी काम किए। कई एडिशन लॉन्च किए और जाना कि कंटेंट का असली मायना क्या होता है। फिर डिजिटल आया और उसके साथ आया मौका dainikbhaskar.com की कई भाषाओं की टीम को नेतृत्व करने का। पन्नों की जगह पिक्सल्स ने ली, लेकिन कहानियों की नब्ज़ वही रही। जब हिन्दी, गुजराती, मराठी के 200 से ज्यादा लोगों की टीम के साथ मिलियन में पेजव्यूज़ तक पहुँचे, तो लगा, आँकड़े अच्छे हैं, लेकिन पढ़ने वाला मुस्कराया या नहीं? यही असली पैरामीटर है! पाठक सुकून में होगा तो परिणाम मिलेगा ही।

इसके बाद Zee Media और फिर India Today Group में Digital Editor और Cluster Head के रूप में डिजिटल, वीडियो और इनोवेशन पर काम किया। AajTak Digital को नया फॉर्मेट दिया। GNT को दर्शक के समय, धैर्य और भरोसे से जोड़ा। Tak ऐप्स, KisanTak, और AI Anchor SANA जैसे प्रोजेक्ट्स किए, जिनमें न केवल ब्रांड बना, बल्कि भाषा और भरोसे की बुनियाद भी रखी। भारत का पहला शॉर्ट वीडियो न्यूज़ देने वाला Tak App बना जो 59 सेकंड की न्यूज़ में मुकम्मल कहानी कह देता है, एक AI एंकर की कहानी भी देखी जो बिना थके ख़बर पढ़ती है।

इस पूरी यात्रा में मैंने बहुत कुछ सीखा... कभी मंच पर गुलज़ार, जावेद अख़्तर, पीयूष मिश्रा जैसे दिग्गजों के साथ बैठा, तो कभी अपने ही भीतर के लेखक से लड़ता रहा। कभी आम किसानों के साथ खेत में बैठकर सीखा कि content किस मिट्टी में उगता है, और कभी मीटिंग में इस पर बहस की कि स्क्रीन के पीछे असली हैसियत किसकी होनी चाहिए? देखने वाले की या उसकी जिसकी कहानी हम दिखा रहे हैं? किसकी चलनी चाहिए पत्रकार की या किरदार की?

मूलतः मुझे यह समझ, यह नज़रिया माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय से ही मिला था. यह संस्थान मेरे लिए सिर्फ युनिवर्सिटी ही नहीं रहा बल्कि मेरी भाषा की पहली प्रयोगशाला था, जहां हर असाइनमेंट में खुद से भिड़ना होता था और हर क्लास एक संवाद की तरह लगती थी। वहीं सीखा कि पत्रकारिता रटना नहीं, देखना सिखाती है। खबर को आंकड़ा नहीं, अनुभव की तरह पढ़ना होता है। और सबसे ज़रूरी बात, शब्दों से ही सोच बनती है। क्लासरूम में घुला हुआ विचार, कैंटीन की बहसें, और लाइब्रेरी की चुप्पियां की लर्निंग आज भी किसी अच्छी स्क्रिप्ट की रचना में शामिल होते हैं।

इस संस्थान ने मुझे सिर्फ थ्योरी और टूल्स नहीं दिए, उसने कंटेंट को लेकर एक व्यावसायिक समझ के साथ-साथ एक नैतिक दायित्व भी दिया। वहीं जाना कि खबर लिखने से पहले खबर को जीना होता है। ख़बरों की तकनीकी बारीकियों से लेकर विचार की स्वतंत्रता तक... सब कुछ सीखा, जिसने आगे चलकर बड़े प्लेटफॉर्म्स, टीम लीडरशिप और डिजिटल इनोवेशन के फैसलों के पीछे बुनियाद की तरह काम किया। आज जब किसी हेडिंग को तय करता हूँ या किसी स्क्रिप्ट के भीतर एक पॉज़ छोड़ता हूँ, तो लगता है, यह ठहराव, यह दृष्टि, कहीं वहीं भोपाल की कक्षाओं में सीखी थी।

अब बात ज़रा साहित्य की...जो मेरा दूसरा घर रहा है, जहाँ मैं कभी-कभी जाकर खुद से मिल लेता हूँ। लेखन की बात चल रही है तो कुछ बात साहित्यिक लेखन की भी कर ली जाए। काम के दरम्यान मैंने विसंगतियों पर व्यंग्य की तीन किताबें लिखीं 'परम श्रद्धेय: मैं खुद', 'चिल्लर चिंतन', 'बातें बेमतलब'। एक नाटक 'नौटंकी राजा' लिखा, जिसे दिल्ली के अलावा कई शहरों के मंचों पर सराहा गया। कुछ व्यंग्य पढ़े, कुछ सुनाए। कभी शाहरुख, सलमान, आमिर, अक्षय जैसे सितारों से लेकर मंत्री, वैज्ञानिकों और टेक लीडर्स से इंटरव्यू किए, लेकिन कई बार कैमरे के सामने से ज़्यादा दिलचस्प वो स्क्रिप्ट लगी जो उसे पीछे से चलाती है। वो किस्सा लगा जो बनने वाले लोगों के बीच चलता है।

लेकिन इन सबसे बीच वो बड़ी उपलब्धि क्या रही?

वो एक खत, जो किसी अनजान पाठक ने भेजा। उसने लिखा- ट्रेन में आपकी लिखी किताब पढ़ी। अद्भुत लगी। आपको चेक भेज रहा हूँ। जब अगली किताब लिखें तो मुझे ज़रूर भेजिए। या वो एक छात्र, जो कहता है- सर, आपकी स्क्रिप्ट पढ़कर मज़ा आ गया। और वो एक रात...जब मैं चुपचाप अपनी अधूरी स्क्रिप्ट को

देखता हूँ और मन ही मन मुस्कराता हूँ- तू अब भी अधूरी है, लेकिन अब तेरे पास जल्दी ही आवाज़ होगी। खबरों से कुछ अलग लिखना चाहने वाले पत्रकार अकसर इस हालत से गुजरते हैं।

यूट्यूब पर 140 से ज़्यादा लाइव किए।जिनमें एंकरिंग भी की, स्क्रिप्टिंग भी, और हाँ, कभी-कभी घर में अपने लिए चाय भी खुद बनाई। कुछ डॉक्यूमेंट्रीज़ में मिट्टी और मार्केट दोनों की खुशबू समेटने की कोशिश की। ब्रांड्स से लेकर किसानों तक सबके पास कहानियाँ थीं, बस उन्हें पकड़ने का लहजा चाहिए था। यानी एक सबक मिला सबसे पास कहने के लिए कुछ न कुछ होता है। बस, आपके पास उसे समझने की नज़र और नजरिया होना चाहिए।

और हाँ, 'Limca Book of Records' में 6 किताबें लिखने वाले देश के एकमात्र जुड़वां भाइयों की जोड़ी के रूप में नाम दर्ज है। जोड़ी हमारी है, लेकिन लिखाई अपनी-अपनी।

कहानी को ज़रा समेटते हैं- मेरा फंडा यही है कि लाइनों को लिखो मत, उनसे थोड़ी देर रुककर मिल लो। कायदे से मिलोगे तो लाइनें खुद सामने आ जाएंगी। लेकिन कई बार जरूर नहीं है कि ये काम इतनी आसानी से हो जाए। यहीं पर पढ़ाई की जरूरत होती है। बहुत पढ़ने की जरूरत होती है।

अब अगर आपको मैं कभी किसी मोड़ पर मिलूं, तो designation मत पूछिए...

बस इतना पूछिए,

`कोई नई लाइन मिली? `

संभव है मैं मुस्कराकर कहूँ...`

`हाँ, लेकिन कहानी अभी भी पूरी नहीं हुई है। पिक्चर अभी बाकी है मेरे दोस्त! `

विश्वविद्यालय बैच

जनसम्पर्क स्नातक पाठ्यक्रम (बीपीआर 1995-96)

संचार एवं जनसम्पर्क पाठ्यक्रम (एमसीपीआर 1996-97)

अनुज खरे

Editor आजतक डिजिटल India Today Group